नोटबंदी का अतार्किक विरोध कर देश का भरोसा खोता विपक्ष

हर्षवर्धन त्रिपाठी

नोटबंदी के बाद जनता के मन में एक भावना आसानी से देखी जा सकती है कि प्रधानमंत्री के इस फैसले को वह हर तरह की परेशानी के बाद भी काला धन रखने वालों और भ्रष्टाचारियों के खिलाफ देख रही है। और जनता की इस भावना ने दरअसल देश के विपक्ष के लिए कतार में लगी जनता से ज्यादा परेशानी की जमात खड़ी कर दी है। विपक्ष इस कदर परेशान है कि पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी परेशानी के इस समय में बंगाल की जनता को छोड़कर दिल्ली की आजादपुर मंडी में रैली कर रही हैं। रैली में उनके साथ आम आदमी पार्टी के नेता और दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल हैं। ये कितनी सही राजनीति है या खराब राजनीति को सही साबित करने की कोशिश, ये इससे भी समझ में आता है कि दिल्ली के मुख्यमंत्री के तौर पर अरविंद केजरीवाल ने दिल्ली की परेशान जनता की परेशानियों को कम करने की कोई कोशिश नहीं की। और ममता बनर्जी तो इस मामले में और भी खराब राजनेता साबित होती दिख रही हैं। जब मुख्यमंत्री के तौर पर ममता बनर्जी को पश्चिम बंगाल की जनता को नोटबंदी से होने वाले नफा-नुकसान के बारे में समझाना चाहिए था, उनके जीवन की मुश्किलों को आसान करने के रास्ते बताने चाहिए थे, उस समय ममता बनर्जी देश की राजधानी दिल्ली के आजादपुर में रैली कर रही थीं। ममता और केजरीवाल ये कह रहे थे कि कभी भी इसकी वजह से देश में दंगे हो सकते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने एक संयुक्त विपक्ष जैसा माहौल बनाने की कोशिश की। मुद्दा सही हो तो ये कोशिश सराही जानी चाहिए। लेकिन, यहाँ ऐसा कुछ नहीं था।

साफ है कि ममता बनर्जी, अरविंद केजरीवाल, समाजवादी पार्टी, कांग्रेस आदि का ये राजनीतिक विरोध है। लेकिन, बड़ा सवाल है कि पूरी तरह से आर्थिक फैसले को क्या विपक्ष पूरी तरह से राजनीतिक विरोध की कसौटी पर कसकर जनता का विश्वास जीत सकता है ? इसका जवाब देश के दो राज्यों के मुख्यमंत्रियों के व्यवहार से आसानी से समझा सकता है। इन दो मुख्यमंत्रियों में से एक हैं विधानसभा चुनाव के ठीक पहले बीजेपी से अलग हुए नीतीश कुमार और दूसरे अभी बीजेपी के साथ खड़े चंद्रबाबू नायडू। नायडू दक्षिण भारत में भाजपा के मजबूत और महत्वपूर्ण सहयोगी हैं और नीतीश कुमार उत्तर भारत में मोदी विरोधी गठजोड़ के महत्वपूर्ण नेता। लेकिन, इन दोनों ही मुख्यमंत्रियों ने हिन्दुस्तान के इस सबसे बड़े आर्थिक फैसले पर आर्थिक नजरिये से प्रतिक्रिया देकर राजनीतिक बढ़त भी हासिल कर ली है। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार पूरी

तरह से इस फैसले के साथ खड़े हैं। नीतीश कुमार ने कहा कि इससे काला धन, भ्रष्टाचार पर रोक लगेगी। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू ने तो पहले ही प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखकर बड़े नोटों को खत्म करने की मांग की थी, जिससे काले धन पर रोक लगाई जा सके।

ममता बनर्जी, अरविंद केजरीवाल, समाजवादी पार्टी, कांग्रेस आदि का ये राजनीतिक विरोध है। लेकिन, बड़ा सवाल है कि पूरी तरह से आर्थिक फैसले को क्या विपक्ष पूरी तरह से राजनीतिक विरोध की कसौटी पर कसकर जनता का विश्वास जीत सकता है ? इसका जवाब देश के दो राज्यों के मुख्यमंत्रियों के व्यवहार से आसानी से समझा सकता है। इन दो मुख्यमंत्रियों में से एक हैं विधानसभा चुनाव के ठीक पहले बीजेपी से अलग हुए नीतीश कुमार और दूसरे अभी बीजेपी के साथ खड़े चंद्रबाबू नायडू। नायडू दक्षिण भारत में भाजपा के मजबूत और महत्वपूर्ण सहयोगी हैं और नीतीश कुमार उत्तर भारत में मोदी विरोधी गठजोड़ के महत्वपूर्ण नेता। लेकिन, इन दोनों ही मुख्यमंत्रियों ने हिन्दुस्तान के इस सबसे बड़े आर्थिक फैसले पर आर्थिक नजरिये से प्रतिक्रिया देकर राजनीतिक बढ़त भी हासिल कर ली है।

नोटबंदी के सरकार के फैसले के खिलाफ विपक्ष को तर्कों के साथ आना चाहिए था। लेकिन, हुआ क्या ? हुआ ये कि दरअसल विपक्ष के पास सरकार के नोटबंदी के फैसले के विपक्ष में कोई सटीक तर्क नहीं है। यहां तक कि कतार में लगी जनता ने भी जब अरविंद केजरीवाल जैसे आंदोलनप्रिय और आरोप उछालकर राजनीति करने वाले नेताओं को भगाना शुरू किया तो भी इन्हें समझ नहीं आया कि जनता क्या चाहती है ? ये समझना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि, राजनीति के अंतिम परिणाम के तौर पर नेता जनता को अपने पक्ष में चाहता है। ये बात विपक्ष के नेता नहीं समझ सके और कुतर्क की तरफ बढ़ चले। उससे भी बात नहीं बनी तो साजिश के सिद्धान्त पर बाखूबी काम किया गया। उदाहरण के तौर पर भारतीय जनता पार्टी की बंगाल इकाई के खाते में दो किस्तों में एक करोड़ रुपये जमा करने की बात प्रचारित की गई। जिससे साबित किया जा सके कि नोटबंदी की खबर पहले ही लीक कर दी गई थी। दूसरा साजिशी सिद्धान्त आया जिसमें भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश इकाई के अध्यक्ष केशव प्रसाद मौर्य की बेटी को 2000 के नोटों की गड्डियों के साथ दिखाया गया। वो खबर पूरी तरह से गलत निकली। मौर्य ने बताया कि उनके कोई बेटी है ही नहीं। ये कुछ उदाहरण भर हैं। और ये उदाहरण साबित करते हैं कि दरअसल विपक्ष के पास इस मामले विरोध के लिए कोई सही तर्क, तथ्य हैं ही नहीं।

ऐसा नहीं है कि विपक्ष को राजनीति के लिए मौका नहीं मिल सकता था। लेकिन, दो बातें थीं। पहली ये कि कतारों में खड़े लोगों को नरेंद्र मोदी के किए पर भरोसा है। और दूसरा ये कि विपक्ष के नेताओं की विश्वसनीयता और मंशा संदेह के दायरे में आती रही। इस कदर कि दिल्ली के लक्ष्मीनगर इलाके में अरविंद केजरीवाल आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ताओं के साथ लोगों का

हाल जानने पहुंचे, तो लोगों ने उन्हीं के खिलाफ नारे लगाने शुरू कर दिए। ये सब उसके बावजूद हो रहा था, जब मीडिया के बड़े चेहरे ये साबित करने पर तुले हुए थे कि लोग बुरी तरह से परेशान हैं। किसी भी हाल में देश में 8 नवंबर के 8 बजे के बाद से हुए हर हादसे दुर्घटना को नोटबंदी से जोड़ने की कवायद में सिर्फ विपक्षी नेता ही शामिल नहीं थे। बड़े पत्रकार, लेखक के तौर पर समाज में पहचाने जाने वाले लोग सरकार के फैसले के खिलाफ कुछ भी करने को उतारू हैं। दरअसल ये कुछ भी करने पर उतारू जमात में बहुतायत लोग वही हैं, जो किसी भी हाल में नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री की कुर्सी पर देखने को तैयार नहीं थे। और नहीं थे, वाली मानसिकता अभी भी जड़ अवस्था में है। इसका अद्भुत उदाहरण देखने को मिलता है कि करीब 150 ऐसे ही बड़े बुद्धिजीवियों ने प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखकर इस फैसले को वापस लेने की मांग की है। बुद्धिजीवियों की चिट्ठी है, इसलिए पूरी तरह से उसमें चिन्ता आम आदमी के कष्टों की ही की गई है। लेकिन, कमाल की बात ये भी है कि नोटबंदी से आम आदमी को होने वाले कष्टों की चिन्ता करने वाले ज्यादातर वही लोग हैं, जिन्होंने असहिष्णुता को इस देश का वर्तमान चरित्र बता देने की कोशिश की और देश से मिले सम्मानों को वापस कर दिया था। देश में बुद्धिजीवी, लेखक के तौर पर सम्मान पाने वाले ढेरों लोग भी जब इस आर्थिक फैसले पर राजनीतिक तरीके से प्रतिक्रिया देते हैं, तो संदेह होता है कि क्या मोदी विरोध के नाम पर सरकार के हर फैसले का विरोध करके जनता को गुमराह करने की कोशिश, उनका मानस बदलने की कोशिश कहां तक सही है। कमाल देखिए कि जाने माने पत्रकार शेखर गुप्ता रुपये की कमजोरी पर ये सवाल पूछते हैं कि क्या देश में रिजर्व बैंक गवर्नर हैं। क्या रुपये का डॉलर के मुकाबले कमजोर होना देश के उद्योगों के लिए ठीक है। इसके लिए कुछ करने की जरूरत भी शेखर बताते हैं। 16 नवंबर को किया गया शेखर गुप्ता का ये ट्वीट इतना निर्दोष नहीं है। दरअसल शेखर विमुद्रीकरण के इस समय में रुपये के गिरते भाव को जोड़ने की कोशिश करते दिखते हैं। जबकि, सच्चाई ये है कि रुपये की कमजोरी नहीं हुई है, डॉलर की मजबूती हुई है। डोनाल्ड ट्रंप का राष्ट्रपति बनना इसकी बड़ी वजह बताया जा रहा है।

इसी तरह की एक कोशिश हुई जब स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के सात हजार करोड़ रुपये से ज्यादा के कर्ज को बट्टे खाते में डालने की खबर को माल्या की कर्ज माफी के तौर पर कुप्रचारित किया गया। जबकि, सच ये है कि नरेंद्र मोदी की सरकार के ढाई साल के कार्यकाल में माल्या और दूसरे डिफॉल्टर से कर्ज वसूली की प्रक्रिया जितनी तेजी से पूरी करने की कोशिश हुई, वैसी कोशिश कभी नहीं हुई। बल्कि, पिछली सरकार के समय में ही ज्यादातर सरकारी बैंकों ने बड़े कर्ज दिए और कॉर्पोरेट से उनकी वसूली नहीं हो सकी। सच्चाई यही है कि आर्थिक मामलों पर नरेंद्र मोदी की सरकार बहुत ही चरणबद्ध तरीके से चल रही है। जिसमें सरकार आने के बाद सबसे पहले काला धन बनने से रोकने की कोशिश शुरू हुई। उसके बाद बेनामी संपत्ति पर रोक लगाने कोशिश, लोगों को अपना काला धन बताकर उसे बैंकिंग सिस्टम में वापस लाने की

कोशिश। ये सब बहुत चरणबद्ध तरीके थे। इसी बीच में सरकार ने बैंकों का एनपीए खत्म करने और बैंकों की स्थिति मजबूत करने के लिए पूर्व सीएजी विनोद राय की अगुवाई में बैंक बोर्ड ब्यूरो बना दिया। सबसे बड़ी बात कि इन सारे कदमों के साथ नरेंद्र मोदी जनता को ये भरोसा दिलाने में कामयाब रहे हैं कि ये फैसला पूरी तरह से आम जनता के हित में है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)